IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, March 2024

आधुनिक गद्य एवं काव्य साहित्य में सांस्कृतिक मूल्य

डॉ. कमल किशोर यादव
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय छत्रसाल महाविद्यालय, पिछोर, जिला शिवपुरी, म.प्र.
kamalkishory85@gmail.com

शोध सार

साहित्य एवं संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध है तथा साहित्य एवं संस्कृति दोनों ही मूल्यों को संरक्षित करने का कार्य करते हैं। आधुनिक साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों की दृश्टि से सांस्कृतिक पुनर्जारण की अति महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिसमें समाज सुधार की भावना का विशिष्ट विकास हुआ है।[1] इस सामाजिक सांस्कृतिक चेतना से राष्ट्र प्रेम एव स्वातंत्र्य मूल्यों की प्रतिस्थापना को बल मिला। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, स्वामी रामकृष्ण मिशन इत्यादि सुधारवादी सभी समाजों ने पुरामूल्यों (वैदिक मूल्यों) की पुन व्याख्या प्रस्तुत कर उनके स्वीकरण की प्रेरणा को बल दिया। दूसरी ओर डार्विन सदृश विद्वानों के विकासवादी सिद्धांतों ने ईश्वर की सत्ता पर संदेह का बीज वपन कर दिया था। अतः आस्था और अनास्था के मध्य सांस्कृतिक मूल्य डवांडोल होने लगे थे। बाहर से शांत व व्यवस्थित परिलक्षित होने वाले इस युग के अंतःकरण में बेचेनी, तनाव, कुंठा, क्षोभ, अनिश्चितता की बलवती धाराएं भी सक्रिय थी, ठीक कास्य प्रदेश की अतः सलिला की भांति। उभय आंदोलनों ने बीसवीं सदी को प्रभावित किया, सांस्कृतिक मूल्यों का पारिस्परिक संघर्श जारी रहा[2] फिर भी इस युग में सांस्कृतिक मूल्य एक सीमा तक व्यवस्थित होने लगे हैं। इसलिए इसे संशोधन और व्यवस्था का युग कहा जा सकता है।[3]

पाश्चात्य एवं भारतीय विचार सरणियों से प्रभावित होकर आधुनिक विचारकों ने गंभीरता से सांस्कृतिक मूल्यों पर चिंतन किया। ये विद्वान भी मूल्यों को व्यक्ति, समाज और संस्कृति के त्रिकोण से अलग मानकर नहीं चल सके। यह बात अलग है कि मान्यताऐं बदल गई हैं। यह संसार ही परिवर्तनशील है। व्यक्ति बदला है समाज बदला है, फिर मूल्य क्यों नहीं बदलेंगे? नये जीवनदर्शन की पृष्ठ भूमि पर सांस्कृतिक लक्ष्यों का निर्धारण होता है। वस्तुत मूल्यों से मान्यताऐं हैं जिन्हें मार्गदर्शक ज्योति मानकर सभ्यता चलती रही और जिसकी उपेक्षा करने वालों को परंपरा, अनैतिक, उच्छृंखल या बागी कहती है। किन्तु कभी–कभी ऐसा भी होता है पुराने मूल्यों को मिटाकर उनकी जगह नये मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले व्यक्ति भगवान बन जाते हैं।[4]

राम और कृष्ण अपने समय के ऐसे ही भगवान थे। आधुनिक युग में महात्मा बुद्ध महात्मा गांधी आदि ऐसे ही महापुरूष हैं, जिन्होंने परिवर्तित परिस्थितियों में एक नवीन जीवन दर्शन प्रस्तुत कर नये मूल्यों की ओर इंगित किया है। व्यक्ति के विचार जब समाज के विचार बन जाते हैं तब सामाजिक मूल्यों की चर्चा होने लगती है। परंतु व्यक्ति एक महत्तर मानव समाज का परिवार, नगर, प्रदेश, प्रांत, राष्ट्र या संसार का सदस्य नागरिक सामाजिक विशेष होकर सामान्य अंग भी है। अतः उसके विचार कर्म और कल्पना में मूल्य का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। इन सब विविध मूल्यों (संघर्श) के बाद भी एक बड़ा मूल्य बचा रहता है, जो एक प्रकार से इन सबका सार है वह है सांस्कृतिक मूल्य। अंततः वे व्यक्ति मूल्य ही प्रधान हैं, जो समाज मूल्य के विरोधी न होकर उसके पोशक हों वे ही सच्चे सांस्कृतिक मूल्य हैं।

मुख्य शब्द– सांस्कृतिक, मूल्य, आधुनिक, काव्य, साहित्य, समाज, भारतीयता, आधुनिक कवि आदि।

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, March 2024

प्रस्तावना–

आधुनिक काल के कवियों ने अपने काव्य में सांस्कृतिक मूल्यों का पोशण तथा संवर्धन का कार्य किया है उनका काव्य मानवता की दहलीज पर खड़ा हो काव्य सौन्दर्य विखेर रहा है। प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत ने सांस्कृतिक मूल्यों को व्यक्ति और समाज की परिधि से ऊपर माना है। उनकी दृष्टि में जितने भी मूल्य हैं, उनकी पीठिका सिर्फ समाज ही हो सकता है क्योंकि व्यक्ति का विकास समाज की दिशा में होता है। असल में प्रश्न यह है कि चाहे वे सामाजिक मूल्य हों चाहे वे वैयक्तिक मूल्य हों और चाहें फिर मानव या सांस्कृति मूल्य हों। वे उस सत्य को अभिव्यक्ति देते है या नहीं, जो कि मनुष्य का सत्य है। चाहे वह व्यक्ति के रूप में हों, चाहे समाज के रूप में, मानवीय सत्य एक ही है।[5]

समग्रतः आधुनिक विचारकों ने मूल्यों को तीन रूपों में देखा है।

1. मूल्य वह है, जो जीवन का संरक्षण करे, परंतु जीवन संरक्षण मूलाधार मूल्य होते हुए भी सर्वोच्च नहीं, अतः यह स्थिर किया गया कि–
2. मूल्य वह है, जो जीवन का विकास करे। फिर भी विकास का कोई लक्ष्य या सीमा होनी चाहिए। अतः मूल्यों को सर्वोच्च रूप में स्थिर करने के लिए यह कहा गया कि–
3. मूल्य वह है, जो आत्म साक्षात्कार करने में सक्षम हो। इस दृष्टि से मूल्यों के सोपान में जीवन के लिए कई आवश्यक व अपरिहार्य मूल्य हैं, परंतु उनमें मानव के संदर्भ में आत्म साक्षात्कार परम मूल्य है। संभवतः इसलिए सुकरात ने उद्घोष किया था। कि अपने को जानो और याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से जीवन बोध के रूप में कहा था कि आत्मा ही एक मात्र अत्यंत प्रिय वस्तु है क्योंकि इसी के कारण संसार में पारस्परिक प्रेम की प्रक्रिया गतिशील है।[6]

सांस्कृतिक मूल्यों की दृश्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, प्रेमचंद, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, रामचन्द्र शुक्ल आदि ने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति के अनुसार मूल्यों की स्थापना की। वस्तुतः 1850 से लेकर अब तक का काल आधुनिक काल कहलाता है और इस काल खण्ड में रचा गया साहित्य आधुनिक साहित्य। इसमें स्वतंत्रता के पूर्व के जितने भी साहित्यकार हुए हैं उनकी रचनाओं में जो सांस्कृतिक मूल्य दृष्टिगोचर होते है। उस समय के साहित्यकारों के साहित्य में क्रांति का स्वर मुखर है तथा राष्ट्र प्रेम का भाव है। उस समय जो दुर्व्यवस्था फैली हुई थी, उसका चित्रण इन साहित्यकारों का प्रमुख उद्देश्य था परिणामस्वरूप इन मूल्यों की स्थापना होना तय थी। देशवासियों को सरकार की कूटनीतियों का ज्ञान कराकर उन्हें जागृत किया जा सके तथा देश जिस पतन के गर्त में जा रहा था उससे बचाया जा सके। इसके लिए इन कवियों ने सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना पर बल दिया।

शोध साहित्य कलेवरः–

भारतेन्दु हरिष्चन्द्र ने अपने नाटकों के द्वारा तत्कालीन परिस्थतियों का ज्ञान जनता को कराया। उनके अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा, भारत जननी आदि नाटकों में सरकार की भ्रष्ट नीतियों का तथा भारत की पतनावस्था का वर्णन किया है। भारत दुर्दशा में देश की पतनावस्था तथा पराधीनता का कारण पारस्परिक फूट, द्वेश–भाव, ऊँच–नीच एवं अज्ञान आदि को बताया गया है।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, March 2024

साम्प्रदायिकता, ऊँच–नीच, जातिवाद, बाल विवाह जैसी कुरीतियाँ देश में प्रचलित थीं अंधविश्वासों का प्रचलन था, भूतप्रेत आदि की पूजा जोरों पर थी। वेदान्त ने सबको ब्रह्म बताकर लोगों को निष्क्रिय बना दिया था। संतोष वृत्ति के कारण न वे उद्यम करना चाहते थे न श्रम, जिसके कारण उनका परपंरागत व्यापार ठप्प पड़ गया था। इतना ही नहीं अंग्रेजो द्वारा लायी गयी दुष्प्रवृत्तियों, अपव्यय, अदालतबाजी फैशन, सिफारिशें एवं घूस आदि के व्यापक प्रभाव से भारत के सारे सांस्कृतिक मूल्य धूमिल होते जा रहे थे ऐसे में इन राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा के कवियों ने साहित्य में उन सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः स्थापना का संस्तुत्य प्रयास किया। भारत दुर्दशा में भारत दुर्दैव की इस घोषणा में अंग्रेजों की शोषक अर्थनीति का सत्य अंकित है–

मरी बुलाऊँ देस उजाडूँ, महंगा करके अन्न।
सबके ऊपर टैक्स लगाऊँ धन है मुझको धन्न।।
मुझे तुम सहज न जानो जी,
मुझे एक राक्षस मानो जी।।[7]

देश प्रेम की भावना सर्वव्यापक रूप में भारतेन्दु जी की अधिकतर कृतियों में सजग है। देश प्रेम भारतेन्दु जी की कला के लिए सशक्त, ज्योतिर्मय और अमर प्रेरणा बना। भारत की भक्ति के पावन उद्देश्य को लेकर उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। भारतेन्दु जी ने अपनी लेखनी से देशभर में राष्ट्रीयता का मंगल मंत्र फूंका। भारत जननी, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, विषस्य विषमौषधम आदि में उनके भारतीय सांस्कृतिक मूल्य बरसती नदी के समान उमड़ पड़े हैं।

मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा रामधार सिंह दिनकर की रचनाओं में देश भक्ति तथा सांस्कृतिक मूल्यों की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है– मैथिलीशरण गुप्त की भारत–भारती एक ऐसी रचना है जिसमें भारत के अतीत गौरव को बड़े प्रभावपूर्ण ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है। भारत–भारती के अतीत खण्ड में भारत के अतीत गौरव का गान किया गया है तो वर्तमान खण्ड में देश की वर्तमान हीनदशा का वर्णन है। भारत ज्ञान, विज्ञान और नीति में विश्व गुरू था तथा सांस्कृतिक मूल्यों की खान था उसके पतन के कारणों का भी गुप्त जी ने विस्तृत विवेचन किया है।

गुप्त जी ने शिक्षा के उद्देश्य का खण्डन करते हुए कहा है कि–

वह आधुनिक शिक्षा किसी विधि प्राप्त भी कुछ कर सको।
तो लाभ क्या बस क्लर्क बनकर पेट अपना भर सको।
लिखते रहो जो सिर झुका सुन अफसरों की गालियाँ।
तो दे सकेंगी रात में दो रोटियां घर वालियाँ।।[8]

अपने देश में अपनी ही सरस्वती का अपमान कवि के हृदय में प्रखर वेदना उत्पन्न करता है।

श्रुति, शास्त्र, सूत्र, पुराण, रामायण, महाभारत न पढाकर विद्यार्थियों को विदेशी साहित्य पढ़ाया जाता है तब शिक्षा की दुर्दशा क्यों न हो अतः गुप्त जी भारतीय साहित्य में निहित मूल्यों से जुड़ी शिक्षा के पक्ष पर थे।

धर्म की दशा अत्यंत कष्टकार थी। वास्तविक धर्म तो लुप्त हो चुका था केवल आडम्बर शेष रह गया था। समाज में कई सारी कुरीतियाँ व्याप्त थीं जैसे– बेमेल विवाह, बाप–दादाओं की अंध परम्पाराओं का पालन, वर कन्या विक्रय, नशेवाजी, ईर्ष्या–द्वेष, अनुदारता, गृह कलह, व्यभिचार, आडम्बर आदि। इस प्रकार कवि के द्वारा समाज की इस सामाजिक सांस्कृति हीनता का अवलोकन कर भविष्य में इसे सुधारने के लिए प्रेरणा की गई है।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, March 2024

गुप्त जी द्वारा ही विरचित 'साकेत' में देश प्रेम की उत्कट भावना के साथ विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रकटीकरण तीव्र गति से हुआ है विभीषण के शब्दों में इस की झलक मिलती है–

तात देश की रक्षा का ही कहता हूँ मैं उचित उपाय,
पर वह मेरा देश नहीं जो करे दूसरों पर अन्याय।
किसी एक सीमा में बंधकर रह सकते हैं क्या, ये प्राण।
एक देश क्या, अखिल विश्व का तात, चाहता हूँ मै त्राण।।[9]

माखनलाल चतुर्वेदी जी के काव्य में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश हुआ है उनमें देशभक्ति की भावना कूट–कूट कर भरी है उन्होंने तो मानव की तो बात क्या पुष्प तथा पत्तों के माध्यम से भी मूल्यों को बिखेरा है–

मुझे तोड़ लेना वन माली, उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जायें वीर अनेक।।[10]

'हिमकिरीटिनी' एवं हिमतरंगिनी' में संकलित रचनाओं की कवि की कीर्ति स्तम्भ के रूप में स्वीकार किया जा सकता है इन कविताओं में देश प्रेम और बलिदान के दर्शन होते हैं।

सुभद्राकुमारी चौहान की 'वीरों का कैसा हो बसंत,' 'झांसी क रानी,' 'राखी' आदि कविताओं में देश प्रेम कूट–कूट कर भरा है। झाँसी की रानी, कविता में उन्होंने ओजस्वी वाणी में रानी लक्ष्मीबाई की वीरता का बखान किया है तो जलिया वाले बाग में बसंत कविता में बलिदान का आख्यान किया है। 'वीरों का कैसा हो बंसत' में महापुरूषों के शौर्य की याद दिलायी है–

आ रही हिमालय से पुकार, है उदधि गरजता बार–बार
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार
सब पूछ रहे हैं, दिग दिगन्त,
वीरों का कैसा हो बसंत।।[11]

लंका और कुरूक्षेत्र का स्मरण कर त्रेता या द्वापर युग की वीरता के महत्व का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि बसंत पर्व रक्त पर्व के रूप में मानया जाना चाहिए।

क्रान्ति स्मारक के सैनिक बालकृष्ण शर्मा नवीन जी ने अपनी ओजमयी वाणी से विदेशी शासन को समूल उखाड फैंकन का सकंल्प लेते हुए विप्लव की भैरवी सुनाई है। अतीत गाथा में कवि का मन अधिक नहीं रमा है। समीचीन और वर्तमान चित्रों से उलझते रहना ही उसे पसंद रहा है। नवीन जी ने अहिंसा संग्राम के वीरों को प्रेरणा देने वाले अनेक गीतों की रचना की। 'उर्मिला' महाकाव्य में कवि ने मूल्यों की विवेचना कुछ इस प्रकार की है–

मॉ, देखोगी, दूध तुम्हारा नहीं जावेगा, लक्ष्मण
देकर अपने प्राण करेगा, वह आदर्शों का रक्षण।
जिसके बन्धु राम हों, जिसकी पूज्य सुमित्रा महतारी,
धिक है वह यदि प्राण मोह में पड वन जाये अविचारी।
एक–एक घूँट में तुम्हारे पय से मैन अमृत पिया है,
कैसे विचलित कर सकती, मुझे मृत्यु की अनृत किया है।[12]

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, March 2024

दिनकर वीर रस के वर्तमान कवियों में मूर्धन्य हैं। इनकी गद्य–पद्यात्मक लगभग तीस कृतियाँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। जिसमें वीर भावना प्रधान है। दिनकर ने अपनी सशक्त लेखनी से वीरता, ओज तथा उत्साह की मशाल को प्रज्ज्वलित किया। क्रांति की ज्वाला को उग्र रूप में धधकाया। हुंकार में श्री बेनीपुरी सन् 1955 की भूमिका में लिखते हैं– "हमारे क्रांति युग का संपूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय दिनकर कर रहा है। क्रांतिवादियों को जिन–जिन हृदय–मंथनों से गुजरना होता है, 'दिनकर' की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है।[13] दिनकर की कुछ पक्तियों में सांस्कृतिक मूल्य दृश्टव्य हैं–

अर्द्ध नग्न दंपति के घर में, मैं झोंका बन आऊंगी
लज्जित हो न अतिथि सम्मुख, वे दीपक तुरंत बुझाइगी।[14]

जय शंकर प्रसाद ने जो रचनाएं लिखी उनमें राष्ट्रीयता तथा मानवता जैसे मूल्य विद्यमान हैं। प्रसाद जी के संपूर्ण नाटकों चाहे वह 'चन्द्रगुप्त' हो, 'स्कन्द गुप्त' हो या 'ध्रुव स्वाभिनी' प्रत्येक में राष्ट्रीयता, मानवता तथा प्रेम के उच्च आदर्श (मूल्य) निरूपित किये गये हैं। प्रसाद जी ने कामायनी महाकाव्य में विश्वबंधुत्व की भावना के मूल्य को दर्शाया है। कामायनी के कर्म सर्ग में श्रृद्धा मनु से कहती है–

औरों को हंसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ
अपने खुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ।

निश्चय रूप में यहाँ प्रसाद ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना करना चाही है।

निष्कर्षः–

अतः निश्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आधुनिक गद्य साहित्य हो या फिर काव्य सभी मानवता की बात कहता है। साहित्यकारों ने गद्य की कोई भी विद्या हो जिसमें नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास, या फिर काव्य सभी सांस्कृतिक मूल्यों से संपृक्त हैं, नाटकों में नैतिक चारित्रिक मूल्यों को स्थान स्थान पर स्थापित करते हुए देखा गया है। 'अजात शत्रु' नाटक में मल्लिका की अवतारणा नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षा के उद्देश्य से की गई है। मल्लिका हर स्थान पर नैतिकता और सदाचार की शिक्षा देती है। उसकी मान्यता है कि सदाचार और नैतिकता विश्व की अशांति को समाप्त कर सकते हैं । इसी प्रकार 'विशाख' में साधु प्रेमानंद के प्रयास से नरदेव जैसे अधम व्यक्ति में सांस्कृतिक मूल्यों का संचार हआ है। 'राज्य श्री' में हर्श तथा राज्यश्री राष्ट्रीय मूल्यों के ज्वलंत प्रतीक हैं। राज्य श्री का उद्देश्य ही मानव सेवा बन गया है। वे दीन दुखियों की सेवा में निरंतर लगे रहते हैं। पंत जी ने अपने काव्य में मानवतावाद को विशेष बल दिया। उनकी दृष्टि में वही समाज उन्नति करता है जो अधिक से अधिक समानता रखता है। पंत ने अपने काव्य में कृषक और मजदूरों के प्रति सच्ची सहानुभूति जगाने का प्रयास किया है। उन्होनें कृषक मजदूर को जगाने का प्रयास किया है ताकि वे दरिद्रता, दैन्य तथा शोषण के शिकार न बने।

राष्ट्र धर्म परिचालन के लिए न जाने कितने व्यक्ति अपने दाम्पत्य जीवन के सुख स्वर्ग की बलि दे देते है, कुटुम्ब धर्म एवं कुल धर्म की उपेक्षा करते हैं और जाति एवं समाज धर्म का तिरस्कार। इसी प्रकार विश्व धर्म के परिपालन के लिए राष्ट्रधर्म

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, March 2024

की भी उपेक्षा विधि विहित एवं मंगलकारी है कारण कि विश्वधर्म के परिपालन से समस्त विश्व की स्थिति, रक्षों एवं उसका कल्याण होता है जबकि राष्ट्र धर्म के परिपालन से केवल राष्ट्र का।[15]

भरत एवं विभीषण के सांस्कृतिक मूल्यों का अध्ययन इसी आधार पर करते हैं कि दोनों ने ही गृह धर्म का तिरस्कार इसलिए किया क्योंकि विश्व धर्म के परिचालन के लिए यह आवश्यक था। धर्म के जिस रूप से जितने ही अधिक व्यक्तियों का मंगल हो उसका वह रूप उतना ही श्रेष्ठ है। इस आधार पर विभीषण को भ्रातद्रोही, कुलद्रोही अथवा देशद्रोही कहना भ्रामक है। वस्तुतः वह विश्वप्रेमी है तथा उसके अन्तः स्थल में सांस्कृतिक मूल्य हैं। भरत के चारित्रिक महत्व के मूल्यांकन की भी यही कसौटी है। मातृ धर्म से उनके लिए कुटुम्ब एवं विश्वधर्म का महत्व अधिक था इसलिए उन्होनें अपनी जननी कैकेयी भी भर्त्सना की।

संदर्भ सूची

[1] मॉडर्न रिलीजियस मूवमेंट इन इण्डिया, पृ. 387
[2] रिनेसेंट इण्डिया, पृ. 27–28
[3] आधुनिक साहित्यः व्यक्तिवादी भूमिका, पृ. 113
[4] साहित्यमुखीः दिनकर, पृ. 56
[5] साहित्य कोश, भाग 2, प्रभाकर माचवे, पृ. 0659
[6] धर्मयुग, 7 सितम्बर, 1969 पृ. 12
[7] भारतेन्द्र का गद्य साहित्य समाजशास्त्रीय अध्ययन डॉ. कपिलदेव दुबे, पृ. 142
[8] भारत भारती, पृ. 117
[9] साकेत (एकादश सर्ग) पृ. 437
10 आधुनिक कवि भाग 6 पृश्ठ 1
[11] उर्मिला, (सर्ग–तीन) नवीन, पृ. 339
[12] हुंकार, दिनकर–भूमिका (क्रांति का कवि)
[13] वही, पृ. 23
[14] युगवाणी (बापू) पंत ग्रंथावली भाग 2 पृ. 81
14 परिमल (भिक्षुक) पृ. 103 राजकमल प्रकाशन दिल्ली दि. 1978
15 परिमल विधवा पृ. 98
16 अज्ञेय–सॉप (इन्द्रधनु रौंदे हुए ये)
17 निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– डॉ. लालता प्रसाद सक्सेना, निर्मल प्रकाशन जयपुर, संस्करण 1973, पृ.